तुनकमिजाजी ममता का भाजपा विरोधी महागठबंधन कितना रहेगा सफल?

भाजपा के राज्य में बढ़ते प्रभाव से घबराई ममता यह कहने पर मजबूर हो गई हैं कि भाजपा को हराना है तो कांग्रेस और लेफ्ट को साथ आना होगा। ममता के डर को समझने के लिए लोकसभा चुनाव 2014 के नतीजे पर गौर करना जरूरी है।

ममता ने कभी अपने मुद्दों से समझौता नहीं किया और तुरंत गठबंधन तोड़ लिया। फिर चाहे अटल बिहारी वाजपेयी की अगुआई वाली राजग (राष्ट्रीय जनतात्रिक गठबंधन) सरकार हो या फिर मनमोहन सिंह के नेतृत्व वाली संप्रग (संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन) सरकार। इसमें दो राय नहीं कि ममता आंदोलन से निकली जमीनी स्तर की जुझारू नेता हैं, लेकिन गठबंधन की राजनीति में उनका जोर नहीं चला है। लोकसभा चुनाव की तारीखों के ऐलान से पहले भाजपा के खिलाफ गठबंधन की वकालत करने वाली वह संभवतः पहली विपक्षी पार्टी थी। न केवल कांग्रेस बल्कि दूसरे दलों को भी वह घूम- घूम कर जोड़ती रहीं, लेकिन शुरुआत में ही शर्त रख दी थी कि हिस्सेदारी की नीयत न रखें। उनका साफ कहना था कि जो दल जहां मजबूत है, वहां दूसरे सभी मिलकर उनकी मदद करें। जिसके बाद कोई गठबंधन आकार नहीं ले सकता है

भाजपा के राज्य में बढ़ते प्रभाव से घबराई ममता यह कहने पर मजबूर हो गई हैं कि भाजपा को हराना है तो कांग्रेस और लेफ्ट को साथ आना होगा। ममता के डर को समझने के लिए लोकसभा चुनाव 2014 के नतीजे पर गौर करना जरूरी है।

साल था 2016 का तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, केरल, पुडुचेरी और असम में विधानसभा चुनाव की तैयारी अपने चरम पर थी। लोकसभा चुनाव 2014 में 17 फीसदी वोट पाकर गदगद भाजपा कार्यकर्ता मई के महीने में बंगाल में भाजपा के उदय का सपना संजोये थे। लेकिन कोलकाता की एक जनसभा में पार्टी अध्यक्ष अमित शाह की घोषणा ने सभी को उस वक्त हैरत में डाल दिया था। शाह ने घोषणा कर दी कि पार्टी की प्रदेश इकाई 2019 की लड़ाई की तैयारी करे। लोगों को लगा कि भाजपा ने अपने हथियार डाल दिए। विधानसभा चुनाव में हुआ भी कुछ ऐसा ही ममता दीदी के दीवाने वोटरों ने बंगाल की 294 सीटों में से 211 सीटें तृणमूल के खाते में डाल दी। लोकसभा चुनाव में 17 फीसद वोट हासिल करने वाली भाजपा विधानसभा चुनाव में 10 फीसद वोट के साथ 3 विधानसभा सीटें प्राप्त कर सकी। लेकिन अमित शाह 'काक चेष्टा,बको ध्यानम' की तर्ज पर भविष्य की बड़ी लड़ाई जीतने पर केंद्रित थे। शाह की दूरदृष्टि पश्चिम बंगाल में ममता के अखंड राज में सेंध लगाने के रास्ते को तलाश रही थी।

लोकसभा चुनाव 2019 के शंखनाद से पहले जनवरी की सर्द दोपहरी को कोलकाता के ब्रिगेड मैदान में ममता बनर्जी जब विपक्षी एकता की हुंकार भर रही थीं। तब उनकी नजर दिल्ली की कुर्सी पर गड़ी थी। एक मंच पर 22 पार्टियों को तब ममता ने जुटा तो लिया था। लेकिन जब चुनाव की बारी आई तो एकला चलो रे की तर्ज पर अकेले ही चुनाव में जाने का फैसला किया। मोदी सरकार से सीधे लोहा लेती ममता हरेक रैलियों में भाजपा के 100-150 सीटों पर सिमट जाने की भविष्यवाणी भी करती दिखीं थीं। लेकिन लोकसभा चुनाव में जनता की ममता मोदी सरकार पर जमकर बरसी और बंगाल ने तो 2 सीटों से 18 सीटों पर पहुंचा दिया। जिसकी तैयारी करने की बात साल 2016 में ही अमित शाह ने राज्य के पार्टी कार्यकर्ताओं से कही थी। नतीजतन कभी लाल किले का ख्वाब देखने वाली ममता अब कोलकाता का किला बचाने के लिए हाथ-पैर मार रही हैं।

भाजपा के राज्य में बढ़ते प्रभाव से घबराई ममता यह कहने पर मजबूर हो गई हैं कि भाजपा को हराना है तो कांग्रेस और लेफ्ट को साथ आना होगा। ममता के डर को समझने के लिए लोकसभा चुनाव 2014 के नतीजे पर गौर करना जरूरी है। लोकसभा चुनाव 2014 में 34 सीटें जीतने वाली तृणमूल कांग्रेस की सीटें 2019 में घटकर 22 हो गईं। 2014 में 2 सीटें जीतने वाली माकपा का इस बार खाता भी नहीं खुला। जिस कांग्रेस ने 2014 में चार सीटें जीती थीं वो 2 सीटों पर ही सिमट गई। वहीं 2014 में 2 सीटों के साथ चौथे नंबर की पार्टी रही भाजपा 18 सीटों का सफर तय करते हुए तृणमूल के बाद राज्य की दूसरी सबसे बड़ी पार्टी बन गई। भाजपा बंगाल में न सिर्फ सीट बल्कि वोट शेयर के मामले में भी तृणमूल के करीब पहुंच गई है। लोकसभा चुनाव 2014 में तृणमूल को 35 फीसदी, माकपा को 30 फीसदी, कांग्रेस को 10 फीसदी और भाजपा को 17 फीसदी वोट प्राप्त हुए थे।

वहीं 2017 के बंगाल विधानसभा चुनाव की बात करें तो 45 फीसदी वोट शेयर के साथ राज्य की 211 सीटें तृणमूल ने अपने नाम की थी। 20 फीसद वोट लाकर माकपा 26 सीट जीत पाई थी। कांग्रेस 12 फीसदी वोट के साथ 44 सीटें जीतने में कामयाब हुई थी। भाजपा का वोट शेयर इस चुनाव में 10 फीसद रहा और सीटों की संख्या महज 3 थी। लेकिन साल 2019 के लोकसभा चुनाव में तृणमूल का वोट प्रतिशत 43 रहा और सीटें मिलीं 22, भाजपा ने 40 फीसदी वोट शेयर के साथ 18 सीटें अपने नाम कीं, 6 फीसदी वोट लाने वाली माकपा का तो खाता भी नहीं खुला। वहीं कांग्रेस को 6 फीसद वोट के साथ 2 सीटें हासिल हुईं। इन आंकड़ों ने जब ममता को आईना दिखाया तो उन्हें लेफ्ट और कांग्रेस की याद आई। 2021 में विधानसभा चुनाव होने हैं। पीएम मोदी और अमित शाह के एजेंडे में बंगाल सबसे ऊपर है। इसलिए ममता अभी से महागठबंधन का राग अलाप रही हैं।

लेकिन इतिहास को टटोल कर देखें तो ममता ने कभी अपने मुद्दों से समझौता नहीं किया और तुरंत गठबंधन तोड़ लिया। फिर चाहे अटल बिहारी वाजपेयी की अगुआई वाली राजग (राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन) सरकार हो या फिर मनमोहन सिंह के नेतृत्व वाली संप्रग (संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन) सरकार। इसमें दो राय नहीं कि ममता आंदोलन से निकलीं जमीनी स्तर की जुझारू नेता हैं, लेकिन गठबंधन की राजनीति में उनका जोर नहीं चला है। लोकसभा चुनाव की तारीखों के ऐलान से पहले भाजपा के खिलाफ गठबंधन की वकालत करने वाली वह संभवतः पहली विपक्षी पार्टी थी। न केवल कांग्रेस बल्कि दूसरे दलों को भी वह घूम-घूम कर जोड़ती रहीं, लेकिन शुरुआत में ही शर्त रख दी थी कि हिस्सेदारी की नीयत न रखें। उनका साफ कहना था कि जो दल जहां मजबूत है, वहां दूसरे सभी मिलकर उनकी मदद करें। जिसके बाद कोई गठबंधन आकार नहीं ले सकता है।

तृणमूल कांग्रेस और ममता की राजनीति को करीब से जानने वाले कहते हैं कि उनका रवैया ही ऐसा रहा है कि वह खुद को सेंटर आफ पॉलिटिकल ऐटरैकशन में रखकर चलना चाहती हैं। यानी गठबंधन उस शर्त पर, जिसमें तृणमूल के हित सर्वोपरि हों। कांग्रेस से अलग होकर 1998 में साल के पहले दिन ममता ने अपनी पार्टी की घोषणा की और नाम रखा तृणमूल कांग्रेस। साल 1999 में लोकसभा चुनाव हुए और अबकी बारी अटल बिहारी के नारे के साथ भाजपा नीत राजग की सरकार केंद्र में बनी। उस वक्त ममता बनर्जी अटल सरकार में शामिल होकर केंद्र सरकार में रेल मंत्री बन गईं। जिसके बाद मार्च 2001 में तहलका टेप कांड होता है और भाजपा के तत्कालीन अध्यक्ष बंगारू लक्ष्मण रिश्वत कांड के बाद ममता ने रेलमंत्री के पद से इस्तीफा दिया और राजग से भी किनारा काट लिया। साल 2001 में विधानसभा चुनाव हुए और कभी कांग्रेस से अलग होकर अपनी अलग पार्टी बनाने वाली ममता ने बंगाल विस चुनाव कांग्रेस के साथ मिलकर लड़ा। लेकिन हिस्से में हार ही आई। एक वक्त ऐसा भी था जब बंगाल में वाम मोर्चा के खिलाफ तृणमूल-भाजपा व कांग्रेस का महागठबंधन बनाने की कवायद ममता ने की थी। लेकिन प्रणब मुखर्जी ने इसका कड़ा विरोध किया था। बाद में साल 2004 में ममता एक बार फिर राजग में शामिल हो गईं और केंद्रीय कोयला मंत्री बनीं।

साल 2009 में ममता कांग्रेस का हाथ पकड़कर फिर से रेलमंत्री बन गईं। साल 2012 में एफडीआइ व पेट्रोल-डीजल के मुद्दे पर ममता ने कांग्रेस का साथ छोड़कर संप्रग से समर्थन वापस ले लिया। कई बार सनक में फैसले लेने की आदत की वजह और ममता के पुराने रिकॉर्ड को देखते हुए कांग्रेस और वाम दल तृणमूल अध्यक्ष की बात को कितनी गंभीरता से लेते हैं ये तो आने वाले वक्त में ही पता चलेगा।

लेकिन चुनावी रणनीतिकार और जदयू के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष प्रशांत किशोर दो विरोधियों को एक मंच पर लाकर चुनावी सफलता दिलाने के लिए जाने जाते हैं और बीते दिनों ममता बनर्जी से उनकी मुलाकात भी हुई थी। ऐसे में बंगाल में भी एक नया प्रयोग देखने को मिल सकता है क्या? इसके लिए थोड़ा और इंतजार करना होगा।